हेमंत चौकियाल

मृत्यु के विशाद में भी जीवन का उल्लास देखने वाला कवि-चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

विश्व साहित्य के इतिहास पर नजर दौड़ाएं तो कई कवि ऐसे हैं जिन्होंने बहुत कम उम्र में ही अपने द्वारा रचित साहित्य से अपना ऊँचा मकाम बनाया है। बहुत कवियों ने मार्मिक प्रेमगीत लिखे हैं विरह गीत लिखे हैँ, लेकिन मृत्यु का स्वागत जिस उल्लास से चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने किया है वह उनके साहित्य के बाहर दुर्लभ है। वे विश्व के अकेले ऐसे कवि हैं जिन्होने मृत्यु को जी भर कर जिया है। भले ही इस यात्रा में कई बार विशाद के क्षण भी आये, कई बार घनघोर नैराश्य भी उन पर हावी हुआ लेकिन इन तमाम मनोभावों के बीच उन्होंने मृत्यु का स्वागत जिस ढंग से किया वह उनके साहित्य के विशाल फलक की एक बानगी है।अपनी रचनाओं में नैराश्य भावनाओं को प्रश्रय देने पर भी वे दिव्य आशा के पुरूषार्थी कवि रहे हैं।

पाठकों को बताते चलें कि हिमवंत कवि के नाम से प्रसिद्ध कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल का जन्म उत्तराखंड प्रदेश के रूद्रप्रयाग जनपद के अगस्त्यमुनि तीर्थ के नजदीक मालकोटी गांव में 20 अगस्त 1919 को हुआ था। 13वर्ष की उम्र में जीवन की पहली कविता लिखने वाले इस कवि ने 28 वर्ष की उम्र में अपनी मृत्यु तक 750 से अधिक कविताएं, 25से अधिक कहानियां, कई व्यंग्य लेख लिखे। यह साहित्य प्रेमियों का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि अल्पतम जीवन के भी बहुमूल्य 8 वर्ष से अधिक का समय कवि ने क्षय रोग से लड़ते हुए (जो तत्कालीन समय में लाइलाज बीमारी मानी जाती थी) एकाकी जीवन जिया। इसी काल खण्ड ने कवि ने विश्व साहित्य के लिए वह अमूल्य निधि रची, जो अभी पूरी तरह से समाज के बीच नहीं आ पाई, जिस कारण साहित्य जगत का यह हीरा उपेक्षित ही रह गया है। धीरे-धीरे ही सही पर अब यह उम्मीद जाग्रत होती दिखाई दे रही है कि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के उपलब्ध साहित्य का सही मूल्यांकन हो और कवि को वह स्थान हासिल हो जिसके वे हकदार भी हैं। इस चर्चा से पहले कवि द्वारा रचित साहित्य की एक हल्की यात्रा कर लें, लेकिन उससे पहले शायद यह जादा उपयुक्त होगा कि हम उन परिस्थितियों और उस परिवेश की जानकारी भी कर लें जिन्होंने बालक कुँवर सिंह (कवि का वास्तविक नाम यही था) को कवि बनने के लिए खाद पानी का काम किया।

अध्यापक पिता श्री भूपाल सिंह के साथ कवि की प्राथमिक शिक्षा उत्तराखंड के एक दर्शनीय और पर्यटन स्थल नागनाथ के नजदीक उडामाण्डा विद्यालय में हुई। यहाँ सर्दियों में बाँज बुरांश के वृक्षों पर लदी बर्फ के साथ आसपास के पर्वत पहाड़ बर्फ से लद जाते हैं। तब यहाँ का दृश्य बहुत नयनाभिराम होता है। यहीं पर रहते हुए कवि ने 13वर्ष की उम्र में 12 पंक्तियों की अपनी पहली कविता लिखी। जो पूर्णतः नागनाथ के प्राकृतिक वातावरण का परिचय देती है -

ISSN:2583-8849

"ये बाँज बुराँश पुराने पर्वत से
यह हिम से ठंडा पानी
ये फूल लाल संध्या से भी
इनकी यह डाल पुरानी,
इस खग का स्नेह काफलों से
इसकी कूक पुरानी
पीले फूलों में कांप रही
पर्वत की जीर्ण जवानी
इस महापुरातन नगरी में
महाचकित यह परदेशी
अनमोल कूक झंपती झूरमुट
गुजांर अमोल पुरानी।।

नागनाथ से मिडिल कक्षा पास कर कवि को आगे की पढ़ाई के लिए पौड़ी जाना पड़ा। संयोग वशात पौड़ी भी एक सुन्दर पहाड़ी शहर था और यहाँ से सूर्योदय के समय के हिमालय के विहंगम दृश्य ने कवि को तो जैसे हिमालय का पूजक ही बना दिया।

कवि कालिदास की ही तरह चन्द्रकुँवर ने हिमालय की महिमा गाते हुए लिखा कि-

"शोभित चन्द्र कला मस्तक पर
भस्म विभूषित नग्न कलेवर
कटि पर कृष्ण गजानिन सा घन
गिरती घोर घोष कर पद पर
बज्र छटा सी दीप्त सुरधनी
शांत नयन गम्भीर मुखाकृति
अथ इतिहीन, वीर्य यौवन घृति
दीप्त-प्रभा रवि उद्भासित मुख
मूर्ति मान आत्मा की जागृति
ज्योति लिखित ओंकार स्वरित ध्वनि
आदि पुरूष हे! हे पुराण मुनि।।"

चन्द्रकुँवर जी की कविताओं में बादल, वर्षा और हिमालय का विशेष स्थान है। इसके अलावा उन्होंने अपने परिवेश के विभिन्न स्थानों, पशु पक्षियों, पौधों, रीती रिवाजों, नदियों के अनेक चित्ताकर्षक बिम्ब कविताओं में खींचे हैं। दुर्भाग्यवश पैतृक रूप से चली आ रही तपेदिक की बीमारी ने कवि को सन 1938 में 19 की उम्र में घेर लिया। तत्कालीन समय में तपेदिक की बीमारी का सफलतम इलाज या तो भारत में था ही नहीं और कहीं था भी तो बहुत ही मंहगे दामों में। जिसकारण कवि को बीमारी की हालत में समय समय पर समुचित इलाज नहीं मिल पाया, और जो इलाज उनके अध्ययन काल में इलाहाबाद और लखनऊ में मिला भी तो वह नाकाफी साबित हुआ। कुछ समय उन्होंने कौसानी के तपेदिक हास्पिटल सहित चमोली और ऊखीमठ के अस्पतालों में भी स्वास्थ्य लाभ लिया परन्तु इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। फलतः समाज को व पारिवारिक लोगों को इसका संक्रमण न फैले इस हेतु कवि को सन 1945 से पवालियां नामक स्थान पर एकाकी का सा जीवन जीना पड़ा, जहां पर उन्हें बाहर से खाना - पानी दिया जाता रहा। यहीं पर कवि अपनी मृत्यु पर्यन्त 14 सितम्बर 1947तक रहे। इन्हीं 2-3 वर्षों में कवि ने मृत्यु का स्वागत करते हुए, मृत्यु के भय से चार हाथ करते हुए, कभी हंसते हुए तो कभी भारी विशाद में हिन्दी साहित्य को वो अमर निधि सौंपी जो उनकी मृत्यु के बाद कवि के अभिन्न मित्र श्री शम्भु प्रसाद बहुगुणा के अथक प्रयासों से नन्दिनी और गीत माधवी गेय गीत कविताओं की पुस्तक के माध्यम से प्रकाश में आई। ध्यातत्व है कि कवि का श्री बहुगुणा से परिचय हाई स्कूल प्रवेश के समय पौड़ी में हुआ था और वहीं दोनों हैर्दयिक मित्र बन गये थे, जो मित्रता जीते जी तो रही ही लेकिन श्री बहुगुणा, कवि की मृत्यु के पश्चात भी अपना मित्र धर्म निभाते रहे । इसी मित्र धर्म के सद्प्रयासों से ही कवि के परिजनों, मित्रों और देश व दुनिया को पता चला कि वे साहित्य जगत की एक अमूल्य निधि थे। भले ही अभी उनका पूरा मूल्याँकन होना बाकी है।

पवालियां में तपेदिक का मरीज घोषित होने पर एकाकी छोड़ दिये जाने को भी उन्होंने कविता के माध्यम से यों प्रतिबिंबित किया -

अपने ही द्वारों के आगे भिक्षुक बनकर
खड़ा हुआ मैं अपनी आंखों में आँसू भर
कोई सुनता हाय न मेरी दो पल में
मुझे अपरिचित बना दिया नयनों के जल ने

ISSN:2583-8849

मुझे देख कोई न निकलता अब हंस बाहर
अपने ही द्वारों के आगे भिक्षुक बनकर।।

क्षय रोग से दिन-प्रतिदिन क्षीण होते शरीर ने और मृत्यु को दिन-प्रतिदिन नजदीक आने की मन:स्थिति में भी कवि ने आंतरिक भावों की सहज अभिव्यक्ति के रूप में निसृत कसक भरी पंक्तियों को लिखते हुए भी कवि ने मृत्यु के भय को नहीं बल्कि प्रेम की कसक को ही अपनी साधना और आराधना बना लिया। तभी तो वे लिखते हैं -

"मुझे प्रेम की अमरपुरी में
अब रहने दो
अपना सब कुछ देकर
कुछ आँसू लेने दो।
प्रेमपुरी नित जहाँ रूदन में अमृत झरता
जहाँ सुधा का श्रोत,
उपेक्षित सिसकी भरता।।

1946के आखिरी दिनों में उन्होंने अपने सहपाठी बुद्धि बल्लभ थपलियाल को पत्र लिखकर बताया कि(मेरा) इस जननी से विदाई का समय आ गया है। फरवरी 1947 में जब बुद्धि बल्लभ थपलियाल पंवालिया पहुंचे तो कवि की कविताओं के साथ ये कविता भी पढ़ी-

"अब न रूकेगा किसी तरह भी मेरा जाना
अब लेगी विश्राम आन्त अति मेरे उर की धड़कन
रोना मत जननी यदि जीवित रह न सका मैं....

इक्कीस वर्ष की उमंगों की उम्र में ही जब चन्द्रकुँवर को पता हो गया कि अब तपेदिक उनका सहचर बन गया है तो तब उन्होंने अपनी दृष्टि और लेखनी को ही अपनी सहचरी और संगिनी बना लिया। मृत्यु के देवता यम का स्वागत वो इन शब्दों में करते हुए लिखते हैं कि -

"बैठ मृत्यु के द्वारों पर भीषण निश्चय से
मैं गाता हूं यम का यश वैवस्वत यम का।
आ गई है मृत्यु इसको लूँ हँसकर रो-रो कर
यह कौन मित्र या बैरिन जो आती उर के भीतर।।

यह देखना किसी आश्चर्य से कम नहीं कि चन्द्रकुँवर ने 'मेरा परिचय' कविता में भी किन शब्दों में जीवन की गूढ़ बात कह दी -

"जीवन ने मुझको
प्रभात की भाँति खिलाया
आशाओं ने मुझे
कुसुम की भाँति हँसाया
सन्ध्या ने कर दिया चकित
मुझ को शोभा से
स्निग्ध मरण ने मुझे
निशा की भाँति सुलाया।।

मृत्यु का भय बड़े से बड़े शूरवीर को भी नैराश्य से भर देता है लेकिन यह चन्द्रकुँवर का कवि मन ही कर सकता था कि इस अवस्था में भी अपने गीतों को संबोधित करते हुए कवि अपने जीवन से लौटने की बात भी दृढ़ता से कर सके -

"प्यारे गीत, बहुत दिन रहे साथ हम जग में
रोते गाते हुए बढ़े, हम जीवन-मग में
आज समाप्ति हुई पथ की अब मुझे विदा दो
लौटो तुम, जाने दो दूर मुझे जीवन से।।

चन्द्रकुँवर ने प्रकृति के सुन्दर सानिध्य में रहकर जीवन के अन्तिम क्षणों तक काव्य सृजन किया। एक प्राण कितना महान हो सकता है, विरासत में मिली रोग शैय्या जो नैराश्य में प्रतिध्वनित कर मौत का संकेत करती थी किंतु काव्य सृजन से विमुख नहीं कर पाई। अपने पहले प्रवास (शिक्षा के लिए नागनाथ गमन) से अन्तिम प्रवास (मृत्यु स्थल पंवालिया) तक के पड़ावों में सरस्वती के इस वरद पुत्र ने अभाव व कुण्ठा से संस्कारित होकर शांत भाव से दुखों का वरण किया और हिंदी साहित्य को वो महान और कालजयी रचनाएं प्रदान कीं जिनकी इतने कम अल्प जीवन काल में कल्पना भी नहीं की जा सकती।

"मेरा उर सौरभ को बिखरा कर रो-रो कर
कहता मुझको डाली से तोड़ो हँस-हँस कर!
मुझ को चूमो, मुझे हृदय के बीच छिपाओ
मुझ को अपने यौवन का श्रृंगार बनाओ
मरने पर मुझे गिरा दो धीरे से भू-पर
मेरा उर कहता सदा यही रो-रो कर।।

मृत्यु के भय को भी कैसे चन्द्रकुँवर ने जी भर जिया है उसकी एक बानगी देखिए -

"कहाँ मिलेगी मरकर भी इतनी सुन्दर काया

ISSN:2583-8849

जिस पर विधि ने है जग का सौन्दर्य लुटाया
हरे खेत ये, बहती विजन वनों की नदियाँ,
पुष्पों में फिरती मर कर इतनी शीतलछाया?
कहाँ मिलेगी मर कर इतनी सुन्दर काया"।।

तत्कालीन समय में लगभग असाध्य सा समझे जाने वाले क्षय रोग से ग्रसित होकर दिन-प्रतिदिन क्षीण होती काया को देखकर उन्होने मन में उठते भावों को जो शब्द चित्र देकर रेखाचित्र खींचा है, उसे पढ़कर बरबस ही ऐसे लगता है जैसे हमारी ही आँखों के सामने यह सब घटित हो रहा हो-

"हटो दूर, मेरे प्राणों के पास न आओ
मैं हूँ दुखी, मुझे मत सुख के गीत सुनाओ
बहने दो मुझ को, अपनी आँखों के जल में,
मुझे पड़ा रहने दो, अतल तिमिर के तल में
मैं क्या था, हो गया आज क्या, यह न बताओ
हटो दूर, मेरे प्राणों के पास न आओ"।।

एकान्तिक भावुक व्यक्ति का जीवन दर्शन व अपने आत्मावलोकन का सार बताते हुए वे अपनी कालजयी रचना "गीत माधवी" में लिखते हैं -

" लहरों के कलरव से शीतल, इस छाया के नीचे दो पल.
मैं थके हुए ये पद पसार, सुन लूँ वह ध्वनि जो बार-बार
आती है निराश प्राणों में चल।।

जयशंकर प्रसाद के काव्य "आँसू" महादेवी वर्मा की "नीरजा" तथा पंत की "चिदम्बरम" की ही तरह छायावादी काव्य तत्वों के गुण युक्त अपनी कालजयी कृति"गीत माधवी" तो मानो ऐसे लगती है जैसे की किसी शल्य चिकित्सक ने उनके मन और मन:स्थिति का एक्सरे चित्र ही ले लिया हो। बीमारी की दशा में चिकित्सकों के आश्वासनों की प्रतीति न कर हिमवंत का यह कवि, जिसने प्रकृति को ही अपनी सहचरी और सहधर्मिणी माना, से ही अपने मन की बात करते हुए कहता है कि -

"जीवन को कुछ आश्वासन दो
प्राणों को कुछ अवलम्बन दो
ओ विहग, आज ऐसे स्वर में,
गाओ जिस से इस अन्तर में
अभिनव आशा का वर्षण हो" ।।

इस स्वार्थ के रिश्ते नातों से भरी दुनिया में जहाँ कवि तपैदिक से अछूत घोषित हो कर रूग्णता की स्थिति में अपने प्रिय शगल "कविता" और प्रकृति को ही अपना सर्वस्व, अपना साथी, अपना हितैषी, अपनी प्रेरणा मानकर उससे ही वार्तालाप करते हुए कहते हैं -

"ओ माँ, वे लहरें कहाँ गई?
मेरे बचपन में खेल रही।
थी जो, तेरे प्रशस्त उर पर
बदला स्वर, हुआ जरा जर्जर
तुम भी अब पहली सी न रही" ।।

जीवन की विषमताओं के बीच मन में उठते ज्वार - भाटा के बीच भी वे आशा और निराशा के भंवर में उत्साह का संचार का बड़ा संदेश अपनी कविता में देते हुए लिखते हैं -

" यहाँ अमृत है, आशा है, विष है विषम निराशा है
देती महासफलता है, साहस की भाषा है
लड़ो वीर सदा सहायक भाग्य रहा है
निरूत्साह होना इस जग में पाप महा है"।।

इसी आशा और निराशा के सागर में गोते लगाते हुए वे कल्पना भी करते हैं कि -

"ओ रवि, जीवित करो मुझे मेरे मस्तक को
भरो तरंगों से आलोक और गीतों को
दूर करो इस अंधकार को जिसने मेरी
दृष्टि निराश बना दी, कुत्सित स्वप्न दिखा कर
अंग दीन हो गये और मेरी आशाएं
क्षीण हुई, ओ रवि, मुझ को अपनी किरणों में
जागृति दो, शोभा दो, और शक्ति दो
मुझे जगाओ जीवन के कर्तव्य क्षेत्र में
जहाँ वज्र आघात सहे जाते हँस हँस कर
जहाँ निराशाएँ जीवन के आगे झुक कर
बन जाती हैं आशाओं की भी आशाएं"।।

यह देखना कितना आश्चर्य चकित करता है कि मृत्यु से साक्षात्कार करता हुआ व्यक्ति कितना शान्त, कितना स्थिर, कितना यथार्थता के धरातल पर रह सकता है, वह चन्द्र कुँवर बर्त्वाल ही हो

सकता था जिसने निराशा में भी आशा का ही वरण करते हुए लिखा -

" हाय! कौन मैं! हृदय भरा क्यों,
यह इतनी आशा से
इस कुहरे को प्रेम हुआ क्यों,
रवि की दीप्त प्रभा से?"

मृत्यु के पगों की ध्वनि और मृत्यु की कल्पना को इतने सुन्दर स्वरों में गाने का सामर्थ्य ही चन्द्रकुँवर को साहित्य में अलग सा स्थान देने पर विवश करता है -

" पग - पग धर/मेरा हो रहा /क्षीण हो रहा
जीवन का शशिधर/उड़ता कपूर सदृश्य शनै:-शनै:
रोती लहरों पर/धरती पड़ रही पीत/पिघल रहा अम्बर"।।

अपनी मृत्यु के अन्तिम दिनों में, सितम्बर 1947 में लिखी गई "गीत दूत" शीर्षक की कविता में एक तरह से अपनी काव्य प्रतिभा और काव्य को विदा देते हुए चन्द्र कुँवर बर्त्वाल ने लिखा -

" प्यारे गीत, बहुत दिन रहे साथ, हम जग में,
रोते-गाते हुए बढ़े, हम जीवन में
आज समाप्त हुई पथ की, अब मुझे विदा दे
लौटो तुम, जाने दो दूर मुझे जीवन से।
रह अभिन्न, होता हूँ तुम से आज विलग मैं
मेरे गीत बहुत दिन रहे साथ, हम जग में"।।

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल हिन्दी के अकेले ऐसे कवि हैं जिन्होने मृत्यु पर इतना अधिक लिखा है। उनकी मृत्यु सम्बन्धी कविताओं में एक नहीं, कई रंग मिलते हैं।

"मैंने मौत मधुर देखी नटखट बालिका सी" , "मुझे न ज्वाला में डालो माँ न स्वर्ण, सुनार हूँ", "मैंने मृत्यु के सकरूण नयन में सुधा का वास देखा", "मैं मर गया गंगा के तट पर मुझे जला आंए", आदि कई कविताएं इसके उदाहरण हैं।

मृत्यु को अभिशाप नहीं जीवन की ही एक प्रक्रिया में देखते हुए उन्होंने लिखा-

*य" पतझड़ देख अरे मत रोओ, वह वसंत के लिए मरा"*य

जीवन के शाश्वत रूप को मृत्यु भी समाप्त नहीं कर पाती, इसी बात को आत्मसात करते हुए वे लिखते हैं कि -

"मैं मर जाऊंगा, पर मेरे जीवन का आनंद नहीं,
झर जायेंगे पत्र कुसुम तरू पर मधु प्राण वसंत नहीं।
सच है घन तम में खो जाते स्रोत सुनहले दिन के
पर प्राची से झरने वाली आशा का तो अंत नहीं"।।

मृत्यु के प्रति निर्भय संवेदना चन्द्रकुँवर को अपने समय से आगे का और अपनी तरह का अकेला कवि साबित करती है। ऐसा दृष्टिकोण छायावाद के बाद और अभी तक की कविता में भी नहीं आ पाया है, बल्कि आधुनिक भाव-बोध में तो मृत्यु और विनाश का भय बढ़ता ही गया है। सिर्फ 28वर्ष की अल्पायु में मरने वाले, अपने छोटे से जीवन में प्रायः संतापित और अंतिम दिनों में रोगग्रस्त कवि का यह मृत्यु बोध क्या अद्वितीय और आश्चर्यजनक नहीं है?

मृत्यु के द्वार पर बैठकर भी मृत्यु का इंतजार इस स्वागत के साथ करने की हिम्मत शायद इस अल्पजीवन में झेले विषाद के कारण पैदा दार्शनिकता के कारण ही मिली होगी -

"बैठ मृत्यु के द्वारों पर भीषण निश्चय से
मैं गाथा हूँ, यम का यश, वैवश्वत यम का
क्षीण कण्ठ है मेरा, क्षण-क्षण पढ़ते जाते
मेरे हाथ शिथिल, मेरा उर कुटिल मृत्यु ने
छान कर दिया छलनी सा, जीवन की धारा
कभी बह गयी, इससे यदि पूरा न गा सकूँ
यदि न तुम्हारा पौरुष शब्दों में उठा सकूँ
तो न कुपित होना हे गहन मृत्यु के स्वामी!
मुझे क्षमा करना हे यम, हे अन्तर्यामी।।"

बर्त्वाल जी ने दुनिया को अलविदा कहने का ढंग भी अपने ही अनुरूप चुना। जहाँ एक ओर उन्होने मृत्यु के देवता का स्वागत अपने ही अंदाज में किया तो वही जननी और जन्मभूमि से विदा भी अपने ही अंदाज में ली -

" विदा विदा हे हरित तृणों की सुन्दर धरणी
विदा विदा हे मानव-पशु की पूजित जननी
विदा हृदय के सुख, चिर विदा प्राण प्रिय यौवन

हे आकाश, विदा दो मुझको आज रूदन कर
जाता हूँ मैं उस प्रदेश को जहाँ हृदय पर
कभी न पड़ती सूर्य चन्द्र की किरणें सुन्दर
और हाय,इस पृथ्वी के फूलों को चुनकर
अब न तुम्हें पूजूँगा मैं इस नाम के नीचे
तुम भी मुझे विदा दो हे प्रभु, हे परमेश्वर।।"

कवि के देहांत के 75 वर्ष बाद भी हिन्दी साहित्य जगत उनके रचना संसार से अनविज्ञ सा है। ऐसा नहीं है कि उनकी रचनाओं का प्रकाशन नहीं हुआ है। यह कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल का सौभाग्य ही कहा जाएगा कि उन्हें श्री शम्भु प्रसाद बहुगुणा जैसा सहृदय मित्र मिला, जिन्होंने न केवल जीते जी अपनी मित्रता निभाई अपितु कवि के देहांत के बाद भी उन्होंने अपनी मित्रता निभाते हुए न केवल कवि के रचित साहित्य से हिन्दी साहित्य जगत को परिचित कराया। लेकिन यह कवि के साहित्य का ही जादू कहा जायेगा कि उन पर अभी तक तमाम प्रकाशित पुस्तकें जिस भी पाठक की नजर से गुजरी उसके लिए वह एक संग्रहणीय दस्तावेज बन कर, उनकी आलमारियों में कैद हो कर रही गई,जिस कारण अधिसंख्य साहित्य प्रेमी और समालोचक उनके साहित्य से अपरिचित ही रह गये।उनके कुछेक पारिवारिक जनों और स्थानीय बुद्धिजीवियों ने कवि के साहित्य को जन सामान्य को सुलभ बनाने के लिए स्तुत्य कार्य किया है। इनमें कवि के पारिवारिक जन डॉ० योगम्बर सिंह बर्त्वाल, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल शोध संस्थान के पूर्व अध्यक्ष कमलेश गुसाईं, वर्तमान अध्यक्ष हरीश गुसाईं के साथ-साथ संस्कृति प्रकाशन तथा दस्तक पत्रिका के सम्पादक दीपक बेंजवाल, उत्तराखंड राज्य आंदोलनकारी व वरिष्ठ पत्रकार अनूसूया प्रसाद मलासी, प्रकृति संस्था के अध्यक्ष गजेन्द्र रौतेला, सुधीर बर्त्वाल, दस्तक पत्रिका के ई सम्पादक कालिका काण्डपाल,चन्द्रदीप्ति पत्रिका के सम्पादक विनोद प्रकाश भट्ट द्वारा नई पीढ़ी के लेखकों को कवि के बारे में लिखने को प्रोत्साहित करते हुए मंच प्रदान किया जा रहा है। साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्था कलश के संयोजक ओम प्रकाश सेमवाल द्वारा लगातार कवि की कविताओं पर उनके पैतृक गांव मालकोटी व कर्मभूमि पंवालिया में कवि सम्मेलन आयोजित किये जा रहे हैं,चन्द्रकुँवर स्मृति मंच के नरेन्द्र कण्डारी, लोक मंच भीरी आदि प्रबुद्ध जनों द्वारा अनुकरणीय कार्य किया जा रहा है। लेकिन सरकारी इमदाद के प्रयास से इस कार्य को वृहद स्तर पर करने की बहुत जरूरत इस लिए भी जरूरी लगती है ताकि भावी पीढ़ी कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल को जानने के साथ ही अपने इतिहास से भी रूबरू हो सके।

सन्दर्भ -

1-भारतीय साहित्य के निर्माता चन्द्रकुँवर बर्त्वाल - श्री उमा शंकर सतीश।
2-चन्द्रकुँवर का जीवन दर्शन - डॉ० योगम्बर सिंह बर्त्वाल ।
3-दस्तक पहाड़ की - सम्पादक श्री दीपक बेंजवाल।
4--प्रकृति के कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल - सम्पादक जगमोहन आजाद
5-चन्द्र कुँवर बर्त्वाल शोध साहित्य संस्थान अगस्त्यमुनि के अध्यक्ष श्री हरीश गुसाईं जी से साक्षात्कार के अंश।

हेमंत चौकियाल
C/O-श्री जगदीश सिंह रावत
पशुआहार अगस्त्यमुनि
पोस्ट - अगस्त्यमुनि
जनपद रुद्रप्रयाग
उत्तराखंड
246421
Mob+ w/A-9759981877
Mail - hemant.chaukiyal@gmail.com